ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 203-206**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

किरातार्जुनीयम में अंगीरस–अंगरस की उद्‌भावनाः एक अवलोकन

पिंकी निशा

पीएच–डी,संस्कृत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार) भारत

Received-24.05.2025, Revised-02.06.2025, Accepted-08.06.2025 E-mail : aaryvart2013@gmail-com

सारांशः ***संस्कृत साहित्य में भी ऐसे उपजीव्य काव्य विद्यमान हैं जिनसे संस्कृत भाषा तथा अर्वाचीन प्रांतीय भाषाओं के कवियों ने अपने विषय के निर्देश के लिए तथा काव्यशैली के विमल विधान के निमित्त सतत् उत्साह तथा अश्रान्त स्फूर्ति ग्रहण की और आज भी कर रहे हैं। संस्कृत साहित्य में ऐसे उपजीव्य काव्य संख्या में तीन हैं–रामायण, महाभारत तथा श्रीमद्‌भागवत। इन तीनों का अवान्तर काव्य–साहित्य के ऊपर बड़ा ही विशाल, मार्मिक तथा आभ्यन्तर प्रभाव पड़ा है।***

किरातार्जुनीय महाकवि भारवि की अमूल्य रचना है। इसकी कथा का मूल स्रोत महाभारत है। महाभारत के वनपर्व में सत्ताइसवें अध्याय से लेकर इकतालीसवें अध्याय तक की कथा किरातार्जुनीय की कथा का उपजीव्य है। महाभारत में प्राप्त होने वाली मूलकथा नितान्त नीरस एवं शुष्क है। भारवि ने उसी नीरस कथानक को अपनी प्रतिभा द्वारा अति सरस बना दिया है। महाभारत के वनपर्व में इस कथा का आरंभ अत्यन्त ही सरल ढंग से किया गया है।

कुंजीभूत शब्द– किरातार्जुनीयम, अंगीरस–अंगरस, उपजीव्य काव्य, अर्वाचीन प्रांतीय, काव्यशैली, विमल विधान, अश्रान्त स्फूर्ति

शोध–भूमि – किरातार्जुनीय में अंगी रस वीर है। महाकवि भारवि ने अपने इस महाकाव्य में अर्जुन को नायक के रूप में तथा किरात वेषधारी शिव को प्रतिनायक के रूप में प्रस्तुत कर दोनों की वीरता तथा दोनों के मध्य चलने वाले युद्ध का साङ्‌गोपाङ्‌ग वर्णन किया है और अद्‌भुत काव्य–रचना–कौशल को प्रकट किया है। किरातार्जुनीय में वीर–रस का सन्निवेश अर्जुन, शिव तथा शिव की सेना के वीरों के माध्यम से हुआ है। कुछ आचार्यों के अनुसार वीर–रस तीन प्रकार का और कुछ के अनुसार चार प्रकार का होता है।'[1] किरातार्जुनीय में युद्ध वीर–रस का विशेष रूप से परिपोष हुआ है। धर्म–वीर के अन्तर्गत अर्जुन की तपश्चर्या आती है। दान–वीर और दया–वीर का कोई प्रसंग किरातार्जुनीय में प्राप्त नहीं होता। युद्ध–वीर को दो प्रकार का माना जा सकता है– 1.शस्त्र–प्रधान और 2. बुद्धि–प्रधान। भारवि ने दोनों को समान महत्त्व प्रदान करते हुए नायक अर्जुन तथा प्रतिनायक शिव में शस्त्र–प्रधान युद्ध–वीर का तथा नायिका द्रौपदी, भीम एवं वनेचर में बुद्धि–प्रधान युद्ध–वीर का सुन्दर निबन्धन किया है।

दुर्योधन के शासन–प्रबन्ध–विषयक समाचार को एकत्र कर लौटे हुए वनेचर की उक्तियों में बुद्धि–प्रधान युद्धवीर का परिपोष देखा जा सकता है। वह दुर्योधन के मनोभावों को युधिष्ठिर के सम्मुख प्रस्तुत कर उन्हें अपना पौरुष प्रकट करने के लिए प्रेरित करता है।[2] द्रौपदी भी युधिष्ठिर के क्रोध एवं उद्योग को संवर्धित करने वाले वचन कहती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–'(द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है) इन्द्र के सदृश तेजस्वी आप के पूर्वजों ने इस वसुन्धरा का अविच्छिन्न उपभोग किया है, जिसे आप इतनी सरलतापूर्वक हाथ धो बैठें, जितनी सरलता से एक मद–स्रावी गजराज पुष्प–ग्रथित माला को ध्वस्त कर देता है।' जिसका क्रोध कुछ करके दिखा देता है और जो आपत्तियों को दूर भगा देता है, ऐसे पुरुष की वशता लोग स्वयं स्वीकार कर लेते हैं। इसके विपरीत क्रोध से रहित व्यक्ति यदि मित्र है तो कोई उसका आदर नहीं करता और यदि वह शत्रु है तो कोई उससे डरता नहीं।' 'महाराज! क्षमा का त्याग कीजिए, शत्रुओं का दमन करने के लिए फिर उस प्रचण्ड प्रताप का आश्रय लिजिए और प्रसन्नता को स्थान दीजिए। काम–रहित महर्षि लोग काम–क्रोधादि शत्रुओं का दमन कर सिद्धि प्राप्त करते हैं, किन्तु राजा नहीं।[3]

द्रौपदी के उपर्युक्त वचनों में बुद्धि–प्रधान युद्ध–वीर का सुन्दर परिपोष देखा जा सकता है। इसी प्रकार शस्त्र–प्रधान युद्ध–वीर का अतिसुन्दर परिपाक किरातार्जुनीय में हुआ है। महर्षि, अर्जुन के उत्साह को उद्दीप्त करते हुए युधिष्ठिर से कहते हैं–'पराक्रम का आश्रय लेकर ही आपको पृथ्वी पर अधिकार प्राप्त करना होगा। आपका शत्रु बल और शस्त्र में आपसे बढ़ा–चढ़ा है। अतः शत्रु से बढ़ने के लिए उपाय करना होगा, क्योंकि युद्ध–क्षेत्र में विजयलक्ष्मी प्रकर्षाधीन रहती है।'[4]

इसी प्रकार महर्षि व्यास का भीष्म, द्रोण और कर्ण के पराक्रम का वर्णन कर मन्त्र–विद्या प्रदान करने के विषय में कहना और प्रदान करना[5] भी अर्जुन के उत्साह को पुष्ट करता है। इन्द्र के प्रसादनार्थ तपश्चर्या करने के लिए अर्जुन इन्द्रकील पर्वत की ओर प्रस्थान करते हैं और वहाँ उग्र तपश्चर्या करते हैं। उनके तप में विघ्न उपस्थित करने के लिए गन्धर्वों के साथ आनेवाली अप्सराओं के विलास–पूर्वक आगमन, वन–विहार, उनकी पुष्पावचय–केलि, रति–केलि, जल–केलि तथा श्रृङ्‌गार चेष्टाओं को कवि ने अतिविस्तार से उपन्यस्त किया है। यह विस्तार अनुचित है।

उपरि–कथित वस्तुओं के सन्निवेश द्वारा एक तो कवि महाकाव्य के नियमों का निर्वाह करने में सफल हुआ है, दूसरे, श्रङ्‌गार रूप अंग–रस का परिपोष, उनके सन्निवेश से सुन्दर रूप से हो जाता है। इसके अतिरिक्त उन अप्सराओं की विविध शृङ्‌गार–चेष्टाएँ तथा उनका विफल होना अर्जुन के अडिग उत्साह को परिपुष्ट करने में और भी सहायक हो जाता है। इस प्रकार यद्यपि श्रृङ्‌गार–रस इस काव्य में पर्याप्त समय तक चलता है, तथापि, क्योंकि वह वीर रस के सहायक रूप में ही सन्निविष्ट हुआ है, इसलिए वहाँ कोई अनौचित्य नहीं है।

'अप्सराएँ अर्जुन को मोहित करने आईं थीं, किन्तु अर्जुन को देखकर स्वयम् उनमें काम का अवतार हो गया।'[6] उन सुर–सुन्दरियों के नेत्र अर्जुन के अङ्‌ग–प्रत्यङ्‌गों को देखकर जितना प्रसन्न हुए, उतना विकसित कमलों के समूह से, सप्त–पर्ण के स्तबक और मालती से भी तृप्त न हुए।'[7] इस प्रकार तथा अनेक अन्य प्रकारों से उनकी श्रृङ्‌गार–चेष्टाओं के विफल होने का वर्णन किया गया है। यहाँ सन्निविष्ट शृङ्‌गार का परिपोष अंगी रस वीर के सन्निबन्धन में किसी प्रकार बाधक नहीं है।

स्थायी भाव (उत्साह) के चित्रण का अनेक उदाहरण किरातार्जुनीय में प्रस्तुत किया गया है। अर्जुन की परीक्षा के लिए आये हुए ब्राह्मण–वेशधारी इन्द्र को जो उत्तर अर्जुन ने दिया है, वह उनके उत्साह का सूचक है। वे कहते हैं–'तभी तक पुरुष लक्ष्मी का आश्रय बना रहता है, तभी तक उसका यश स्थिर रहता है और तभी तक वह पुरुष है, जब तक वह अभिमान का परित्याग नहीं करता। जिन पुरुषों के विमल यश चन्द्रमण्डल को भी लज्जित करते हैं वे ही लोग अपने वंश का विस्तार करते हैं और उनसे यह वसुन्धरा अन्वर्था है। मेरी तो बस यही इच्छा है कि शत्रुओं के द्वारा किये गये कपट–व्यवहार से हमलोगों पर जो कलंक का टीका लगा है, वह वैधव्य से सन्तप्त शत्रु–रमणियों के लोचन–जल से धुल जाय।'[8] इस प्रकार के अनेक उदाहरण वहाँ देखे जा सकते हैं।

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

अन्य उदाहरणों में किरातार्जुनीय का वह प्रसंग लिया जा सकता है जहाँ वराह–वेष–धारी मूक–दानव को देखकर अर्जुन अनेक प्रकार के वितर्क करते हैं और अन्त में उनके वध का निश्चय कर धनुष उठा लेते हैं। इसी अवसर पर कवि की उक्ति है– 'निश्चयात्मक बुद्धिशाली अर्जुन के द्वारा महान् गाण्डीव धनुष जो अभङ्गुर था और प्रत्यंचा से युक्त था, तपस्या के कारण अर्जुन के क्षीणबल हो जाने पर भी, आकृष्ट होकर मित्र की भाँति झुक गया। उस क्षण अर्जुन के गाण्डीव धनुष पर बाण के चढ़ते ही प्रत्यंचा के आकृष्ट होने से उत्पन्न ध्वनि के कारण सब गुफाएँ गूँज गईं।'[9]

अर्जुन के पद–प्रक्षेप के कारण पर्वत झुक गया जिससे पर्वत के निवासियों को अपने अस्तित्व के विषय में शंका होने लगी।'[10] यहाँ दानव आलम्बन है, उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन, धनुष का आकृष्ट किया जाना, अर्जुन का पद–प्रक्षेप आदि अनुभाव तथा गर्व और अमर्ष आदि संचारी भाव हैं। दानव के वध करने का उत्साह स्थायी भाव है। वराह–वेष–धारी मूक–दानव को देखकर प्रतिनायक शिव भी उत्साह से भर उठे। 'उन्होंने अवस्थान–पूर्वक धनुष आकृष्ट किया। उनके चरण के दबाव से पर्वत झुक गया और विशाल वासुकि के अंगों से, जो कि उस धनुष की प्रत्यंचा का काम दे रहे थे अग्नि के स्फुलिङ्ग निकलने लगे। इसके अनन्तर अमोघ बाण आकाश–पथ को दीपित करता हुआ बड़े वेग से शंकर के धनुष से, जिसकी टंकार से हाथियों का झुण्ड थर्रा जाता था, मेघ–मण्डल से विद्युज्ज्वाला की तरह छूटा।'[11] यहाँ आलम्बन वराह है, उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन, धनुष का खींचा जाना तथा शिव का पद–प्रक्षेप अनुभाव तथा गर्व और अमर्ष आदि संचारीभाव हैं, जिनसे उत्साह स्थायी भाव व्यंजित होता है।

प्रतिनायक और नायक के उत्साह के कुछ चित्र इस प्रकार हैं–'लक्ष्य की ओर महान् वेग से जाते हुए शंकर के उस बाण के शब्द ने, जो कि विशाल शरपुङ्ख से प्रादुर्भूत हुआ था, और जिससे गरुड़ के वेग–पूर्वक आगमन की शंका होती थी, प्रतिध्वनित होकर विशाल रूप धारण कर लिया। उससे भीषण सर्पों के हृदय और कान फटने लगे। मन से भी तेज गति से जाते हुए (शंकर के) बाण की किरणों के द्वारा, जो शंकर के तीसरे नेत्र से निर्गत वह्नि–ज्वाला के सदृश थीं तथा परिस्फुरण करती हुई विद्युल्लता के सदृश पिशङ्गवर्ण की थीं, आकाश में उल्का रेखा सदृश मार्ग बन गया।'[12]

अब अर्जुन का उत्साह दर्शनीय है–'शंकर के बाण प्रयोग–समय में ही अर्जुन का भी बाण, जो कि क्रुद्ध यमराज की तर्जनी अङ्गुलि के सदृश था, जिसकी आकृति और पर्वों की रेखा मनोहारिणी थी और जिसका अग्रभाग, जो कि स्वच्छ लोहे से बनाया गया था और उस अङ्गुलि के स्वच्छ नख की शोभा का उद्वहन करता था, जीवधारियों को व्यथित करता हुआ आकाश–मण्डल में जा पहुँचा। अर्जुन के बाण ने, जिसका गाण्डीव से मुक्त होना और चलना अलक्षित था, मानो वेग से मार्ग के विस्तार को संक्षिप्त करके मनोगति के साथ ही अथवा कुछ पहले ही लक्ष्य–भेद किया।'[13]

चतुर्दश सर्ग में शिव–प्रेषित दूत को अर्जुन कहते हैं–'जो तुमने कहा कि बाण की आवश्यकता हो तो माँग लीजिये, वह मनस्वियों को शोभा नहीं देता। बल–पूर्वक किसी वस्तु के ग्रहण करने के इच्छुकों को किसी से प्रार्थना करके अपनी श्री को दूषित करना भला कब अच्छा लगेगा। नीच व्यक्ति से विग्रह करने से यश का ह्रास होता है और यदि उनके साथ मित्रता की जाय तो गुण कलङ्कित होते हैं। अतः दोनों तरफ की वस्तु–स्थिति का विचार कर परीक्षक को उसका तिरस्कार करना चाहिए। यही कारण है कि मैंने वन्य–पशु–विघाती के विपरीत अधिक्षेप वचन को कहा। अब यदि वे बाण लेने के लिए आयेंगे तो उसी दशा को प्राप्त होंगे, जिस दशा को सर्प की मणि लेने की इच्छा करने वाला होता है।'[14] यहाँ स्थायी भाव उत्साह का सुन्दर चित्रण हुआ है।

युद्ध के लिए शिव के गणों का उत्साह भी प्रशंसनीय है। समान बलशाली शिव के गण, सुगम और दुर्गम पथ में सम–संचरण करते हुए 'मैं पहले चलूँगा, नहीं मैं पहले चलूँगा' इस प्रकार के अहम्पूर्विका–भाव से वेग–पूर्वक चलने की इच्छा कर रहे थे। अतः वन–प्रदेश सर्वत्र अवरुद्ध होकर व्याकुल–सा प्रतीत होने लगा। प्रमथ गणों के सर्वत्र प्रसरण–शील सैन्य ने अपनी स्थूल जंघाओं के द्वारा सुदूर विस्तृत लता–समूह को नष्ट–भ्रष्ट करते हुए तथा अपने वेगोत्थ वायु से शाल और चन्दन के वृक्षों झकझोरते हुए विपिनों को मानो अवाङ्मुख कर दिया।'[15]

प्रमथ–गणों के बाण–प्रहार–कौशल तथा अर्जुन के पराक्रम और बाण–प्रहार– कौशल का अतिविस्तार से वर्णन कर कवि ने युद्ध–वीर–रस का पूर्ण सन्निबन्धन किया है। इस प्रसंग में कवि की कुछ सरस उक्तियाँ इस प्रकार हैं–'(अर्जुन के) ये बाण आकाश से, पृथिवी से, दिशाओं के मण्डल से, सूर्य के बिम्ब से अथवा इस तपस्वी के शरीर से एक ही बार धनुष की प्रत्यंचा के आकृष्ट करने से गिर रहे हैं क्या ऐसा किरात–सैन्य ने माना।'[16] शंकर की सेनाओं ने अनेक स्थलों में रहते हुए भी एक–स्थान–स्थित तपस्वी (अर्जुन) को, जो सूर्य की प्रखर किरणों के सदृश तीक्ष्ण बाणों से समूह को धारण कर रहे थे, प्रत्येक योद्धा के समक्ष रण–नृत्य करते हुए इस प्रकार देखा, जिस प्रकार संसारी लोग उग्र बाण के सदृश प्रखर किरणपुंजधारी सूर्य को एक स्थान में स्थित होने पर भी अपने–अपने सामने देखते हैं।' आलम्बन विभाव का कितना सुन्दर चित्रण यहाँ हो पाया है।

पंचदश सर्ग में प्रतिनायक और नायक दोनों के उत्साह का विशद् चित्रण किया गया है। प्रतिनायक के विषय में कवि की उक्ति है–'शंकर द्वारा प्रक्षिप्त सुवर्णमयी बाण–संहति जो आकाश–पथ में संचरण कर रही थी, अपने उच्च स्वर से कर्ण–कुहरस्थ आवरण को भेदती हुई बिजली के समूह के सदृश देदीप्यमान होने लगी।'[17] इसी प्रकार नायक का उत्साह भी दर्शनीय है–'चारचुंचु अर्थात् गति–विशेष से युक्त, चिरारेची अर्थात् शत्रु को पूर्ण रूप से रिक्त कर देनेवाले, चंचच्चीररुचारुच अर्थात् हिलते हुए वल्कल की कान्ति से शोभित होते हुए, चारु अर्थात् सुन्दर, आचारचंचुर अर्थात् युद्ध–व्यवहार के अभ्यास वाले अर्जुन चक्रबन्धादि अनेक रण–कालिकी गतियों से समराङ्गण में परिभ्रमण करने लगे।'[18]

'अर्जुन के रण–कौशल को देखकर शंकर के गण आश्चर्य में पड़ गये और तपस्वियों के शरीर हर्ष से रोमांचित हो उठे। अर्जुन के बाणों से डरी हुई किरात–सेना का युद्ध–क्षेत्र से पलायन करना तथा स्कन्द द्वारा शिव के गणों को समझाया जाना प्रकारान्तर से अर्जुन के उत्साह को ही पुष्ट करता है। शिव की रण–चातुरी को देखकर अर्जुन का विविध वितर्क प्रतिनायकगत उत्साह की ही पुष्टि करता है।'[19] अर्जुन सोचते हैं– 'क्रोध के साथ ही इन (शिव) के धनुष से अविच्छिन्न ध्वनि निकलने लगती है। एक बार के खींचने से धनुष की प्रत्यंचा, मालूम पड़ता है, खींची हुई रह जाती है। बाणों का सन्धान इस प्रकार से हो रहा है, जैसे तूरीण से निकाला ही नहीं जा रहा है। बाण–मोक्ष के विषय में तो कहना ही क्या? मुष्टि तो बाँधनी ही नहीं पड़ती[20] इत्यादि.....।

षोडश सर्ग में वीर–रस का सुन्दर सन्निबन्धन हुआ है। जब अर्जुन किसी भी प्रकार किरात–वेष–धारी शिव को परास्त नहीं कर सके, तब उन्होंने प्रस्वापनास्त्र को इस प्रकार खींचा, जिस प्रकार मेघ–व्याप्त निशीथ ध्वान्त को आकृष्ट कर लेता है।'[21]शंकर ने अपने ललाटस्थ चन्द्र से उसे निरस्त कर दिया। अनन्तर अर्जुन ने शत्रु–सेना को पूर्णरूप से बाँधने के लिए सर्प रूप पाश प्रहार

किया। शिव ने गरुड़ों के आविर्भाव द्वारा सर्पों को शीघ्र भगा दिया। अब अर्जुन ने पावकास्त्र का प्रयोग किया। शिव ने वरुणास्त्र द्वारा उसे खण्डित कर दिया।'[22]

दोनों योद्धाओं के भीषण युद्ध का वर्णन करते हुए कवि ने अर्जुन की विफलता और उनके धैर्य के छूटने का भी वर्णन किया है। जब शिव ने अर्जुन के बाणों का शोषण कर दिया, तब उन्होंने असि की शरण ली। जब असि प्रहार भी व्यर्थ रहा, तब उन्होंने शिला–वर्षण किया। अनन्तर उन्होंने वृक्ष–प्रहार और भुजा–प्रहार किया। दोनों योद्धाओं की मुष्टि–प्रहार–योग्यता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है–'शंकर भगवान् और पृथा–पुत्र अर्जुन के हाथ की अंगुलियाँ कर्कश और संघटित थीं। उनके हाथों से उत्पन्न होता हुआ त्रास–जनक शब्द, जो कि टूटकर भहराते हुए विशाल पर्वत खण्ड के भीषण शब्द जैसा मालूम पड़ता था।

अंगरसों की योजना– किरातार्जुनीय महाकाव्य में अंगीरस वीर के अतिरिक्त शृङ्गार, रौद्र तथा भयानक आदि रसों की अंग रूप में सुन्दर योजना हुई है। अंग रसों में शृङ्गार को इस काव्य में प्रामुख्य प्राप्त हुआ है। इन योजनाओं को कतिपय उदाहरणों के साथ देखा जा सकता है। किरात–वेषधारी शिव के साथ अनेक प्रकार से युद्ध किये हुए और उनको परास्त करने में असफल, अतएव क्रुद्ध अर्जुन के विषय में कवि की उक्ति है–'ऐसा युद्ध कभी नहीं हुआ था'। इस दुःख से सन्तप्त अर्जुन पुनः युद्ध के लिए निश्चय कर प्रबल तेज से प्रदीप्त होकर महानाग के समान, जो अपनी दृष्टि से विष वमन करता है, क्रोध से अपने नेत्रों से जल–बिन्दु गिराने लगे। युद्ध के परिश्रम से अर्जुन के केश–बन्धन ढीले पड़ गये तथा क्रोध के कारण उनके विशाल नेत्रों ने ताँबे के सदृश अरुण वर्ण धारण किया। क्रोधाग्नि से संतप्त उनके मुख को शीतल करने के लिए ही स्वेदबिन्दु सिंचन करने लगे। क्रोध से आच्छन्न अर्जुन ने जलद–पटलाच्छन्न सूर्य की तरह जो वृष्टि के लिए ऊर्ध्व किरणों की पङ्क्तियों को धारण करता है, संग्रामार्थ भ्रू–भङ्गिमा की तीन रेखाओं को धारण किया।'[24] यहाँ शत्रु–सेना आलम्बन है, उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन, अर्जुन का जल–बिन्दु गिराना, उनके नेत्रों का लाल होना, प्रस्वेद भ्रू–भङ्ग आदि अनुभाव तथा अमर्ष, उग्रता आदि संचारीभाव हैं जिनसे परिपुष्ट रौद्र रस की सुन्दर निष्पत्ति हुई है।

किरातार्जुनीय में भयानक रस की भी कहीं–कहीं अतिसुन्दर व्यंजना हुई है। किरात–सैन्य से त्रस्त पशु–पक्षियों की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए कवि का कथन है–'उस समय क्षुभित और अपने अपने स्थान से विनिर्गत तथा संघ से भ्रष्ट पशु–पक्षियों की आर्त–ध्वनि से इन्द्रकील पर्वत के घने–घने वन और कन्दराओं के विवर प्रतिध्वनित हो रहे थे। जिससे वह पर्वत आकस्मिक भय से आक्रन्दन करता हुआ–सा प्रतीत हो रहा था। चमरी गायें, जिनके पुच्छ, जिनमें प्रचुर रोम थे, बाँस की झारियों में संसक्त हो गये थे, प्रबल भय के उपस्थित होने पर धैर्य धारण कर यथास्थान खड़ी रहीं।' सरितायें लुठितोदर मत्स्यों के समूह से व्याप्त हो रही थीं। उनके तट कीचड़ के कारण दुर्गम हो रहे थे और भयभीत होकर भागे हुए हाथियों के द्वारा भग्न चन्दन–वृक्ष के रसों से उनका जल अरुण वर्ण हो गया था। यहाँ किरात–सैन्य आलम्बन, उसका वन में मृगयार्थ इधर–उधर घूमना उद्दीपन, पशु–पक्षियों की आर्त्त–ध्वनि, भय से पलायन आदि अनुभाव, दैन्य, त्रास तथा श्रम आदि संचारीभाव हैं।

किरातार्जुनीय में अंग रस के रूप में शृङ्गार रस की सर्वाधिक सुन्दर योजना हुई है। इसमें सम्भोग शृङ्गार का प्राधान्य रहा है। यहाँ रति के आलम्बन हैं–अप्सराएँ और गन्धर्व। उद्दीपन रूप में भारवि ने षड्–ऋतुओं का, सन्ध्या, अन्धकार, रजनी और चन्द्रोदयादि का वर्णन किया है। 'अष्टम सर्ग में भारवि ने मानिनी नायिकाओं के अनेक चित्र अंकित किये हैं।'[25] एक अप्सरा, जिस समय उसका प्रेमी गन्धर्व भ्रम से उसके सपत्नी के नाम से उसे तार स्वर से सम्बोधित कर पुष्पों का गुच्छा प्रदान कर रहा था, मान कर कुछ भी नहीं बोली और आँखों में आँसू भरकर केवल पैर से भूमि को कुरेदने लगी'[26]–यह मानिनी नायिका के ईर्ष्याकृत मान का सुन्दर उदाहरण है।

अप्सराओं के वन–विहार, पुष्पावचय तथा उनकी शरीर–चेष्टाओं का भारवि ने अतिविस्तार से वर्णन किया है। 'इन्द्रकील के शिखरों पर मार्गों गा अनुसरण करती हुई सुराङ्गनाओं के नूतन किसलय के समान कोमल चरण, हाथी की सूँड के सदृश मांसल जँघाओं से खिन्न होकर उस शिखर की समतल भूमि पर भी चलने में असमर्थ हो गये और पग–पग पर इस प्रकार लड़खड़ाने लगे, जैसे मद–पान करने से पैर अपने वश में नहीं रहत[27]–यहाँ उनके मार्ग–जनित श्रम का और उनकी शरीर–शोभा का वर्णन किया गया है। किसी गन्धर्व द्वारा किसी अप्सरा के स्वागत किये जाने का इस प्रकार वर्णन किया गया है–'किसी सुराङ्गना के उन्नत स्तनों से मनोरम वक्षःस्थल पर प्रिय ने स्वयं माल्य को गुम्फित करने उसकी सपत्नी के सामने ही पहनाया था। यद्यपि वह मान्य जल के कारण मसल गया था, तथापि उसने उसका परित्याग नहीं किया, क्योंकि गुण तो प्रेम में निवास करते हैं, किसी वस्तु में नहीं।'[28] प्रियतम के स्पर्श से वधू कामासक्त हो गई। 'उसने अपने प्रियतम पर छींटा उछालना चाहा। ज्यों ही उसने अंजलि में जल लिया त्यों ही उसके गन्धर्व हँसकर उसका हाथ पकड़ लिया। इस पर कामासक्त–चित्त उस वधू की परिधान–ग्रन्थि ढीली पड़ गई, किन्तु उसे उसकी कांची ने जो जल से खिंच गई थी, ज्यों की त्यों रख दिया और इस प्रकार कांची ने वही काम किया जो एक सखी अपनी सखी की लाज रखने के लिए करती ह।'[29]

अप्सराओं के शोभा नामक अयत्नज अलङ्कार की सुषमा दर्शनीय है–'गन्धर्वों ने देखा–युवतियों का तिलक धुल गया है, उनके अधर से अलक्तक छूट गया है। उनके नेत्रों में कज्जल भी नहीं रह गया है, तथापि उनमें शोभा वर्तमान है। इससे गन्धर्वों को ज्ञात हो गया कि भूषण युवतियों को विभूषित नहीं करते प्रत्युत वे ही भूषणों को भूषित करती हैं। सुराङ्गना के शरीर में अंजन–विहीन आँखों को उसके तिर्यगीक्षण ने सुशोभित कर दिया। ओष्ट–पल्व से यावक धुल गया था, तो भी कम्प ने उसे सुशोभित कर दिया। उसके ललाट पर चन्दन यद्यपि प्रक्षालित हो गया था, तो भी ललाट की रेखा ने ललाट की शोभा को पूर्ववत् बनाये रखा।'30

अप्सराओं के सपत्नी–भय का सुन्दर वर्णन करते हुए कवि की सरस उक्ति है–'अपने अपने बल्लभों के विषय में सशंकित सुर–वधुओं ने यह समझ करके कि मद के कारण हमलागों की बुद्धि जड़ हो गई है, अतः हमलोगों का त्याग करके अन्यत्र रमण करने के लिए कहीं हमारे प्राणनाथ चले न जाएँ, अधिक मात्रा में मद्यास्वादन की अभिलाषा नहीं की क्योंकि जो शंका के आस्पद नहीं है, वहाँ भी प्रेम को शंका दिखलाई पड़ती है। चित्त को शान्ति पहुँचाने वाले एकान्त स्थान, मनोभव, मदिरा के मद, चन्द्रमा की किरणें और हृदयेशों के संगम–इन सब ने रमणियों के प्रेमोत्कर्ष को क्रीडामयी शृङ्गारावस्था तक पहुँचा दिया। मानवती रमणियाँ सम्भोग–विधि में मर्यादाहीन हो गयी। अप्सराओं और गन्धर्वों की इस सुरत–केलि के वर्णन में शृङ्गार रस का सुन्दर सन्निबन्धन हुआ है।

किरातार्जुनीय में विस्मय भाव की भी कहीं–कहीं सुन्दर व्यंजना हुई है। अर्जुन के पराक्रम एवं शौर्य से प्रसन्न होकर शिव अपने वास्तविक रूप में प्रकट होते हैं। उनकी कृपा से अर्जुन को अपनी वे वस्तुएँ जो किरात–वेष–धारी शिव द्वारा युद्ध में छीन ली गयी थीं, प्राप्त हो जाती हैं और यह देखकर अर्जुन को आश्चर्य होता है इसी बात को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है–'वृष की गति सदृश गति वाले अर्जुन तूणीरों सहित गाण्डीव धनुष को, कवच से आच्छादित अपने स्थूल शरीर को तथा पूर्ववत् स्थापित खड्ग

को देखकर आश्चर्य में पड़ गये।'[31] यहाँ अर्जुन के विस्मय भाव की व्यंजना होने से अद्‌भुत रस है। यद्यपि यहाँ विस्मय शब्द के प्रयोग से स्वशब्द–वाच्यत्त्व दोष आ गया है, किन्तु उससे विस्मय भाव के अभिव्यंजन में कोई कमी नहीं आने पाई है।

निष्कर्ष– इस प्रकार किरातार्जुनीय में अंगी रस (वीर रस) का संगो–पांग विवेचना हुई है,साथ ही साथ अंगी रस में भी भारवि ने अपनी जबरदस्त काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है॰ अंग रसों में शृङ्‌गार को इस काव्य में प्रामुख्य प्राप्त हुआ है। तथापि अन्य रसों का सामजंस्य भी अद्‌भुत है प्वीर रस के चार प्रकारों युद्ध–वीर,धर्म–वीर,दान–वीर और दया–वीर में दान–वीर और दया–वीर का कोई प्रसंग किरातार्जुनीय में प्राप्त नहीं होता। प्रथम तीन वीर रस किरातार्जुनीयम में प्राप्त होता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. विश्वनाथ,(1961)साहित्य दर्पण,मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन हाउस, वाराणसी,(3 ⁄ 234)
''स च दान धर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्।''
2. मल्लिनाथ,(1961) किरातार्जुनीय (भारवि प्रणीत) चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, (1. 7–25).
3. वही, 1. 29, 33, 42.
4. वही, 3. 17.
5. वही, 3. 25–26.
6. वही, 10. 17, 40.
7. वही, 10. 39.
8. वही, 11. 61, 64, 67.
9. वही, 13. 2–14.
10. वही, 13. 15–16.
11. वही, 13. 18, 20.
12. वही, 13. 21–22.
13. वही, 13. 25, 27.
14. वही, 14. 18, 24, 25.
15. वही, 14. 32, 34.
16. वही, 14. 53.
17. वही, 15. 43.
18. वही, 15. 38. 'चारचुंचुश्चिरारेची चंचचीररुचा रुचः। चचार रुचिरश्चारु चारैराचारचंचुरः।।''
19. वही, 16. 20–23.
20. वही, 16. 20.
21. वही, 16. 25.
22. वही, 16. 49–53.
23. वही, 17. 10, 19–21, 31.––नायक–गत उत्साह, 17. 24, 26, 27, प्रतिनायक–गत उत्साह
24. वही, 17. 7–9.
25. वही, 8. 46, 48.
26. वही, 8. 14.
27. वही, 8. 22. किरातार्जुनीय, 8. 37.
28. वही, 8. 51.
29. वही, 8. 40, 52.
30. वही, 18. 16.62.
31. सदृशरधि निजं तथा कार्मुकं वपुरतनु तथैव संवर्मितम्।
निहितमपि तथैव पश्यन्नसि वृषभगतिरूपाययौ।।

*****